विचार बिन्दु

पराधीनता समाज के समस्त मौलिक निमयों के विरुद्ध है। –मान्तेस्क्यु

हम असहमत होना भूलते जा रहे हैं

कभी ऐसा भी होता था कि दो मित्र किसी बात पर जमकर बहस करते, एक-दूसरे के तर्कों की धज्जियाँ उड़ाते और फिर साथ बैठकर चाय पीते हुए अगली मुलाक़ात का कार्यक्रम बना लेते। असहमति उनकी मित्रता के रास्ते में नहीं आती थी। आज स्थितियां बदल गई हैं। बहस का अंत किसी निष्कर्ष पर नहीं, कई बार सम्बन्ध-विच्छेद पर होता है। सोशल मीडिया ने तो इस सम्बन्ध-विच्छेद को और भी आसान बना दिया है। एक बटन दबाइए और बरसों पुरानी मित्रता से छुटकारा पा लीजिए! अनफ्रेंड और ब्लॉक जैसे शब्द हमारी सामाजिक शब्दावली का हिस्सा बन गए हैं।

सवाल यह है कि हम असहमत होना क्यों भूलते जा रहे हैं? क्या हमारे विचार इतने कमज़ोर हो गए हैं कि किसी दूसरे विचार की उपस्थिति मात्र से उन्हें ख़तरा महसूस होने लगता है? या फिर हम अपने विचारों के प्रति इतने आश्वस्त हो गए हैं कि दूसरे की बात सुनना ही अनावश्यक समझने लगे हैं? कहीं ऐसा तो नहीं कि हमने विचारों को अपनी पहचान का ऐसा अभिन्न हिस्सा बना लिया है कि उन पर उठाया गया कोई भी प्रश्न हमें अपने अस्तित्व पर आक्रमण लगता है? वास्तव में असहमति किसी भी स्वस्थ समाज की अनिवार्य शर्त है। विचारों का विकास सहमति से कम और असहमति से अधिक होता है। विज्ञान, दर्शन, साहित्य और सामाजिक परिवर्तन का इतिहास इस बात का साक्षी है कि स्थापित मान्यताओं से असहमति व्यक्त करने वालों ने ही अनेक बार नए रास्ते खोले हैं। यदि हर पीढ़ी अपने से पहले की पीढ़ी के विचारों को अन्तिम सत्य मानकर स्वीकार कर लेती, तो मानव सभ्यता आज जहाँ है, वहाँ तक कभी नहीं पहुँच पाती।

असहमति का इतिहास केवल विचारों की प्रगति का इतिहास नहीं है। वह असहमति व्यक्त करने वालों को दी गई यातनाओं, उनके बहिष्कार और दमन का इतिहास भी है। स्थापित सत्ताएँ, चाहे वे राजनीतिक हों, धार्मिक हों या सामाजिक, प्राय: अपने विरोध में उठने वाली आवाज़ों को सहजता से स्वीकार नहीं करतीं। इसलिए यह मान लेना भी ठीक नहीं होगा कि पहले का समाज असहमति के प्रति बहुत उदार था और आज अचानक असहिष्णु हो गया है। अन्तर शायद यह है कि आज असहमति व्यक्त करने के साधन अधिक सुलभ हैं, लेकिन उसे सुनने का धैर्य उसी अनुपात में नहीं बढ़ा है। अभिव्यक्ति के अवसर बढ़े हैं, संवाद की सम्भावनाएँ घटी हैं।

आज राजनीति में विरोधी विचार रखने वाला व्यक्ति केवल प्रतिद्वन्द्वी नहीं रह जाता, उसे शत्रु मान लिया जाता है। उसके किसी अच्छे काम की प्रशंसा करना भी अपने पक्ष के प्रति विश्वासघात समझा जा सकता है। सार्वजनिक जीवन में धीरे-धीरे ऐसी स्थिति बनती जा रही है जिसमें किसी व्यक्ति के विचारों का मूल्यांकन इस आधार पर कम होता है कि वह क्या कह रहा है, और इस आधार पर अधिक कि वह किस पक्ष से जुड़ा हुआ है। एक ही बात यदि हमारे प्रिय पक्ष का समर्थक कहे तो स्वीकार्य हो सकती है और विरोधी कहे तो आपत्तिजनक। इस प्रवृत्ति का असर केवल राजनीति तक सीमित नहीं है। परिवारों में भी असहमति को सहजता से स्वीकार करना कठिन होता जा रहा है। नई पीढ़ी यदि पुरानी मान्यताओं पर प्रश्न उठाती है तो उसे संस्कारहीनता कहकर चुप कराने की कोशिश होती है। दूसरी ओर, पुरानी पीढ़ी की किसी भिन्न राय को बिना सुने ही अप्रासंगिक मान लिया जाता है। दोनों यह भूल जाते हैं कि अनुभव और नवीनता एक-दूसरे के विरोधी नहीं, पूरक भी हो सकते हैं।

यहीं हम अपनी शिक्षा-व्यवस्था पर भी विचार कर सकते हैं। हमारे शिक्षा संस्थान विद्यार्थियों को प्रश्न करना सिखाते हैं या केवल वे सही उत्तर देना जो उन्हें सिखाए-रटाए गए हैं? किसी विद्यार्थी का शिक्षक से असहमत होना उसकी जिज्ञासा का प्रमाण माना जाता है या अनुशासनहीनता का? हम बच्चों को तर्कशील बनाने की बात तो करते हैं, लेकिन जब वे हमारे अपने विचारों पर प्रश्न उठाते हैं, तब हम कई बार असहज हो जाते हैं। यह विरोधाभास केवल शिक्षा का नहीं, हमारी पूरी सामाजिक मानसिकता का है।

हमारी सार्वजनिक संवाद-संस्कृति भी इस समस्या के लिए कम ज़िम्मेदार नहीं है। टेलीविज़न की बहसों में तर्क से अधिक महत्त्व आवाज़ की ऊँचाई का हो गया है। वहाँ किसी की बात सुनने के लिए नहीं, उसे चुप कराने के लिए बोला जाता है। बहस का संचालन करने वाला व्यक्ति भी कई बार संवाद का सूत्रधार कम और किसी प्रतियोगिता का निर्णायक अधिक दिखाई देता है। दर्शक भी शायद इसी बात के अभ्यस्त होते जा रहे हैं। उन्हें विचारों की जटिलता से अधिक यह जानने में रुचि होती है कि किसने किसको चुप करा दिया। सोशल मीडिया ने इस प्रवृत्ति को और बढ़ाया है। वहाँ तत्काल प्रतिक्रिया देने का दबाव है। किसी विचार को समझने, उस पर सोचने और फिर अपनी राय बनाने का अवकाश ही कहाँ है? किसी ने कुछ कहा नहीं कि हम उसके समर्थन या विरोध में मोर्चा सँभाल लेते हैं।

सोशल मीडिया की एक और विशेषता है। वहाँ हमें धीरे-धीरे वही विचार अधिक दिखाई देने लगते हैं जिनसे हम पहले से सहमत हैं। हम भी प्राय: उन्हीं लोगों को पढ़ना और सुनना पसंद करते हैं जो हमारी मान्यताओं की पुष्टि करते हैं। इस तरह हम अपने चारों ओर एक ऐसी दुनिया बना लेते हैं जिसमें हमारी ही आवाज़ बार-बार लौटकर सुनाई देती है। हमें भ्रम होने लगता है कि जो हम सोचते हैं, वही अधिकांश लोग सोचते हैं और जो हमसे असहमत हैं, वे या तो अज्ञानी हैं या दुर्भावनाग्रस्त। इससे दूसरों को समझने की क्षमता कम होती जाती है।

असहमति का इतिहास केवल विचारों की प्रगति का इतिहास नहीं है। वह असहमति व्यक्त करने वालों को दी गई यातनाओं, उनके बहिष्कार और दमन का इतिहास भी है। स्थापित सत्ताएँ, चाहे वे राजनीतिक हों, धार्मिक हों या सामाजिक, प्रायः अपने विरोध में उठने वाली आवाज़ों को सहजता से स्वीकार नहीं करतीं। इसलिए यह मान लेना भी ठीक नहीं होगा कि पहले का समाज असहमति के प्रति बहुत उदार था और आज अचानक असहिष्णु हो गया है।

इससे भी बड़ी समस्या यह है कि हम विचार और व्यक्ति के बीच का अन्तर भूलते जा रहे हैं। किसी के विचार से असहमत होने का अर्थ यह नहीं कि वह व्यक्ति सम्मान के योग्य नहीं रहा। एक ही व्यक्ति के कुछ विचार हमें स्वीकार्य और कुछ अस्वीकार्य हो सकते हैं। लेकिन आज हम किसी एक असहमति के आधार पर पूरे व्यक्ति का मूल्यांकन कर डालते हैं। मानो मनुष्य कोई जटिल, बहुआयामी अस्तित्व न होकर केवल एक मत का नाम हो। किसी लेखक की एक टिप्पणी पसंद नहीं आई तो उसकी सारी रचनाएँ व्यर्थ हो जाती हैं। किसी मित्र ने किसी राजनीतिक या सामाजिक प्रश्न पर भिन्न राय व्यक्त कर दी तो वर्षों का आत्मीय सम्बन्ध संदिग्ध हो जाता है। वो ज़रा-सी बात पे बरसों के याराने गए! हम भूल जाते हैं कि मनुष्य का व्यक्तित्व उसके किसी एक विचार से कहीं बड़ा होता है। यह प्रवृत्ति साहित्य और बौद्धिक जगत में भी, जहाँ असहमति को सबसे अधिक सम्मान मिलना चाहिए, दिखाई देती है। किसी रचना की आलोचना को रचनाकार पर व्यक्तिगत आक्रमण मान लिया जाता है। किसी विचारधारा से असहमति होते ही उसके समर्थकों की समूची रचनात्मक उपलब्धियों को नकारने की कोशिश होने लगती है। दूसरी ओर, अपने प्रिय लेखक की कमज़ोर रचना की भी प्रशंसा करना मानो निष्ठा का प्रमाण बन जाता है, जबकि साहित्य का मूल स्वभाव ही प्रश्न उठाना है।

लेकिन असहमति का सम्मान करने का अर्थ यह नहीं कि हर विचार समान रूप से उचित है। पूर्वाग्रह, घृणा, भेदभाव और असत्य का प्रतिवाद आवश्यक है। यदि कोई विचार मनुष्य की गरिमा और समान अधिकारों को नकारता है, तो उसका विरोध करना सामाजिक ज़िम्मेदारी है। असहमति की संस्कृति का अर्थ निष्क्रिय तटस्थता नहीं है। लेकिन प्रतिवाद और अपमान एक ही बात नहीं हैं। किसी विचार का दृढ़ता से विरोध करते हुए भी व्यक्ति की गरिमा का ध्यान रखा जा सकता है। सभ्य संवाद का अर्थ अपने विचारों से समझौता करना नहीं, बल्कि उन्हें तर्क और विवेक के आधार पर प्रस्तुत करना है।

यहीं एक और बात ग़ौर तलब है। हम दूसरों से असहमत होने का अधिकार तो चाहते हैं, लेकिन दूसरों को हमसे असहमत होने का अधिकार देने के लिए तैयार नहीं हैं। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की असली परीक्षा तब होती है जब कोई ऐसी बात कही जाए जो हमें नापसंद हो। अपनी पसंद की बात सुनना किसी उदारता की माँग नहीं करता। उदारता की आवश्यकता तब पड़ती है जब सामने वाला हमारे विश्वासों को चुनौती देता है। असहमति को स्वीकार करने के लिए सबसे पहले यह मानना ज़रूरी है कि हमारे ग़लत होने की भी सम्भावना है। यह स्वीकार करना आसान नहीं होता। जो व्यक्ति कभी अपने विचारों पर पुनर्विचार नहीं करता, वह वस्तुत: विचार करना ही बन्द कर देता है। एक और बात भी ध्यान देने योग्य है। असहमति के लिए केवल बोलने का साहस पर्याप्त नहीं, सुनने का धैर्य भी चाहिए। हममें से बहुत-से लोग दूसरों की बात सुनते हुए भी वस्तुत: सुन नहीं रहे होते। हम केवल इस प्रतीक्षा में रहते हैं कि सामने वाला अपनी बात समाप्त करे और हम उसका उत्तर दे सकें।

लोकतंत्र केवल चुनाव कराने या बहुमत से सरकार बनाने की व्यवस्था नहीं है। वह साथ रहने की एक संस्कृति भी है। ऐसी संस्कृति जिसमें भिन्न विचारों, विश्वासों और जीवन-पद्धतियों वाले लोग एक-दूसरे के अस्तित्व और अधिकारों को स्वीकार करते हैं। लोकतंत्र में बहुमत को निर्णय लेने का अधिकार अवश्य मिलता है, लेकिन इससे अल्पमत की आवाज़ का महत्त्व समाप्त नहीं हो जाता। असहमति की उपस्थिति लोकतंत्र की कमज़ोरी नहीं, उसकी शक्ति है। यदि समाज में असहमति के लिए स्थान सिकुड़ता जाएगा, तो लोकतंत्र का बाहरी ढाँचा भले बना रहे, उसकी आत्मा कमज़ोर होती जाएगी।

शायद हमें फिर से असहमत होने की कला सीखनी होगी। ऐसी कला जिसमें अपनी बात कहने का साहस हो और दूसरे की बात सुनने का धैर्य भी। जिसमें तर्क हों, लेकिन कटुता न हो; दृढ़ता हो, लेकिन दुराठाह न हो। जिसमें यह स्वीकार करने की विनम्रता भी हो कि सत्य पर किसी एक व्यक्ति, समूह या विचारधारा का एकाधिकार नहीं है। और सबसे बढ़कर यह विश्वास हो कि किसी बात पर असहमत होने के बाद भी हम एक-दूसरे के साथ बैठ सकते हैं, बातचीत कर सकते हैं और चाय पी सकते हैं।

इसकी शुरुआत बहुत छोटे स्तर पर करनी होगी। अगली बार जब कोई अपना हमसे असहमत हो, तो उसे तत्काल ग़लत सिद्ध करने के बजाय एक बार यह पूछकर देखें कि वह ऐसा क्यों सोचता है। सम्भव है हम तब भी उससे सहमत न हों। लेकिन इतना तो हो ही सकता है कि हम उसे थोड़ा बेहतर समझने लगें। असहमति बनी रहे और आत्मीयता भी-क्या यह कोई छोटी उपलब्धि होगी?

–अतिथि संपादक,
डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल,
(शिक्षाविद और साहित्यकार)

जयपुर की पतंगबाजी : आसमान में उड़ती रंगीन विरासत, 'वो काटा' के शोर में गूंजता भाईचारा

जैपुर - तीन सदियों का गुलाबी सफ़र....



डॉ. गोरधन लाल शर्मा

राजमहल की छतों से शुरू हुआ पतंगबाजी का सफर आज देशभर में पहचान बना चुका है। मकर संक्रांति पर गुलाबी नगरी का आसमान रंग-बिरंगी पतंगों से सज उठता है। सिटी पैलेस म्यूजियम में संरक्षित सैकड़ों वर्ष पुरानी पतंगें, चरखियां और मांझे इस अनूठी परंपरा की ऐतिहासिक गवाही देते हैं।

जयपुर की पहचान उसके महलों, हवेलियों और गौरवशाली स्थापत्य तक सीमित नहीं है। यहां की कुछ परंपराएं ऐसी हैं, जो शहर की सांस्कृतिक धड़कनों में रची-बसी हैं। मकर संक्रांति पर आसमान में लहराती रंग-बिरंगी पतंगें, छतों से उठती 'वो काटा' की आवाजें और उल्लास में डूबे लोग इसी जीवंत परंपरा की तस्वीर पेश करते हैं। जयपुर की पतंगबाजी महज मौसमी मनोरंजन नहीं, बल्कि शाही विरासत, कारीगरी, खेल कौशल, रोजगार और सामाजिक सौहार्द का अनूठा संगम है।

उपलब्ध ऐतिहासिक विवरणों के अनुसार, जयपुर में पतंगबाजी का प्रचलन महाराजा रामसिंह के शासनकाल में विकसित हुआ। कला प्रेमी महाराजा ने पतंग बनाने वाले कारीगरों को भी राजाश्रय दिया था। उस दौर में पतंगों को 'तुक्कल' कहा जाता था। पतंगसाज इन्हें तैयार कर राजमहल पहुंचाते और मोटी सूतली से बांधकर सिटी पैलेस की छतों पर लगी खूंटियों के सहारे हवा में तान देते थे। महाराजा इन पतंगों को आकाश में लहराते देखकर आनंदित होते और कारीगरों को पुरस्कृत करते थे। जयपुर के राजघराने में भगवान गोविंददेवजी को राजा और स्वयं को उनका सेवक मानने की परंपरा रही है। मान्यता है कि भगवान के मनोरंजन के लिए ही राजमहल में पतंगें उड़ाई जाती थीं। आज भी आराध्य गोविंददेवजी को सोने-चांदी की पतंग और चरखी अर्पित करने की परंपरा इस ऐतिहासिक जुड़ाव को जीवंत रखती है। सिटी पैलेस म्यूजियम में प्रदर्शित सैकड़ों वर्ष पुरानी पतंगें, चरखियां और मांझे इस विरासत के साक्षात दस्तावेज हैं। **तुक्कल से मांझे तक, बदलता गया अंदाज :** शुरुआती दौर में पतंगें मोटी सूतली और बंटे हुए धागे से उड़ाई जाती थीं। तेज हवा में जब कभी तुक्कल टूटकर दूर जा गिरती, तो उसे वापस लाने के लिए घुड़सवार तक दौड़ा दिए जाते थे। राजमहल की पतंगों ने आमजन को आकर्षित किया तो पतंग निर्माण और बिक्री का कारोबार भी फैलने लगा। उस समय जमनजी पतंग वाले की दुकान खासी प्रसिद्ध थी। छिदम्मल, घेलवी, अद्दी, मझौली, पौनी और पट्टी कम जैसी अनेक किस्मों की पतंगें बनने लगीं। पतंग निर्माण में मुस्लिम कारीगरों का विशेष योगदान रहा, जबकि जयपुर में मांझा तैयार करने का काम कोली समाज के लोगों ने संभाला। शुरुआती दौर में चावल और कांच से मांझा तैयार होता था। बाद में लखनऊ और बरेली के मांझे तथा वहां के कारीगरों के आने से इस कला में नए प्रयोग हुए। अलग-अलग मिश्रणों से मांझे की मजबूती और धार बढ़ी।

छतों से मैदानों तक पहुंचे पतंगों के दंगल

लगभग 1920 के आसपास जयपुर में पतंगबाजी का दायरा बढ़ने लगा। यह निजी मनोरंजन से आगे बढ़कर कौशल प्रदर्शन और प्रतिस्पर्धा का खेल बन गई। लाल डूंगरी, जलमहल और भट्टियों के मैदान पतंगबाजों के प्रमुख अखाड़े बने। मकर संक्रांति पर लखनऊ, बरेली और रामपुर से पतंग-डोर बेचने आने वाले व्यापारी त्योहार के बाद स्थानीय पतंगबाजों के साथ मुकाबले करते। उनके दांव-पेच देखने के लिए भी बड़ी संख्या में लोग जुटते थे। राजपुरोहित रामप्रताप, उदयनारायण और कन्हैयालाल तिवाड़ी जैसे शौकीनों ने इस परंपरा को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। शुरुआती मुकाबलों में 'सह के पेच' प्रमुख थे, जिनमें पतंगें लंबे समय तक एक-दूसरे के साथ उलझी रहती थीं। बाद में दांव-पेच की तकनीक विकसित हुई, जिसमें फुर्ती और सूझबूझ की जरूरत होती थी। अहसान मियां, मोहम्मद हसन, गुल हसन, रतनजी, भौमजी, भिक्खी महाराज, पं. दुर्गादत्त और खान मोहम्मद जैसे अनेक पतंगबाजों ने जयपुर की इस कला को विशिष्ट पहचान दिलाई।

जब 'वो काटा' ने तोड़ी मजहब की दीवारें : जयपुर की पतंगबाजी का सबसे खूबसूरत पक्ष इसका सामाजिक सौहार्द रहा है। यहां आसमान में पेच लडाने वाले पतंगबाज जमीन पर दिलों को जोड़ते रहेइस भाईचारे की उल्लेखनीय तस्वीर 1947 के विभाजन के कठिन दौर में भी देखने को मिली। जब देश के कई हिस्सों में सांप्रदायिक तनाव और हिंसा का माहौल था, तब जयपुर के भट्टियों के मैदान में हिंदू-मुस्लिम पतंगबाज आपसी सद्भाव के साथ पेच लड़ाते रहे। यह प्रसंग बताता है कि पतंगबाजी ने जयपुर के सामाजिक जीवन में कितनी गहरी जगह बनाई थी।

अखिल भारतीय प्रतियोगिताओं से मिली राष्ट्रीय पहचान

जयपुर की पतंगबाजी को संगठित पहचान दिलाने में अखिल भारतीय प्रतियोगिताओं की अहम भूमिका रही। वर्ष 1961 में जलमहल ग्राउंड पर पहली अखिल भारतीय पतंग प्रतियोगिता आयोजित हुई। इसका पूरा खर्च कन्हैयालाल तिवाड़ी ने वहन किया था। दिल्ली और बरेली की नामी टीमों ने इसमें हिस्सा लिया, हालांकि बरेली की दो टीमों के बीच प्रस्तावित फाइनल मुकाबला नहीं हो सका।

वर्ष 1974 में काइट फ्लाइंग एसोसिएशन ने दूसरी अखिल भारतीय प्रतियोगिता आयोजित की, जिसमें राजस्थान और देश के अन्य हिस्सों की 68 टीमों ने भाग लिया। जयपुर की पिंक सिटी काइट क्लब ने प्रथम पुरस्कार जीता। अलीमुद्दीन, बाबू पहलवान और अब्दुल शकूर उर्फ ऊनी भाई ने अपने शानदार पेचों से दर्शकों को रोमांचित किया। दिल्ली दूसरे और मुंबई तीसरे स्थान पर रही। 18 मार्च 1978 को जयपुर अढ़ाई-शती समारोह समिति की ओर से तीसरी अखिल भारतीय प्रतियोगिता आयोजित की गई। इसमें दिल्ली की नेशनल काइट क्लब प्रथम, जयपुर की शौकीन काइट क्लब द्वितीय और दिल्ली की राजधानी काइट क्लब तृतीय रही। इन आयोजनों ने जयपुर को राष्ट्रीय स्तर पर पतंगबाजी के प्रमुख केंद्र के रूप में स्थापित किया।

हुनर के साथ रोजगार का भी आसमान

जयपुर की पतंगबाजी ने मनोरंजन के साथ रोजगार के अवसर भी पैदा किए। पतंग निर्माण के काम में महिलाएं, बच्चे और बुजुर्ग तक भागीदारी निभाते रहे हैं। यहां तैयार पतंगें देश के विभिन्न हिस्सों में भेजी जाती हैं। जयपुर के पतंगसाज अहमदाबाद, दिल्ली, भड़ौच और गुजरात के अन्य शहरों में भी अपनी दुकानें लगाते हैं। हरिनारायण मीणा, नवरत्न जैन, रामनारायण और बाबू भाई कुरैशी जैसे कारीगरों के बनाए पतंगों की प्रतियोगिताओं में सराहना होती रही है।

ऑल राजस्थान स्टेट काइट फ्लाइंग एसोसिएशन और जयपुर काइट फ्लाइंग एसोसिएशन जैसी संस्थाएं प्रतियोगिताओं के जरिए इस कला को आगे बढ़ा रही हैं। इन आयोजनों से नई प्रतिभाओं को मंच मिलता है और अनुभवी पतंगबाजों को अपना हुनर दिखाने का अवसर मिलता है।

मकर संक्रांति पर उत्सव बन जाता है पूरा शहर

मकर संक्रांति आते ही जयपुर का रंग-ढंग बदल जाता है। त्योहार से कई दिन पहले चांदपोल बाजार, जौहरी बाजार और हल्दियों के रास्ते में पतंगों और डोर की दुकानें सज जाती हैं। सुबह से शाम तक आसमान रंग-बिरंगी पतंगों से भर जाता है और 'वो काटा' की गूंज पूरे शहर में सुनाई देती है।

जयपुर की पतंगबाजी का असली वैभव यही है कि इसमें राजसी अतीत, धार्मिक आस्था, कारीगरों का हुनर और आमजन का उत्साह एक साथ दिखाई देता है। सिटी पैलेस की छतों से शुरू हुई एक तुक्कल ने सदियों का सफर तय कर पूरे शहर को अपना बना लिया। आज गोविंददेवजी को अर्पित सोने-चांदी की पतंगों से लेकर मकर संक्रांति पर घरों की छतों तक, यह परंपरा अपनी जड़ों से जुड़ी हुई है। जब गुलाबी नगरी का आसमान पतंगों से भरता है, तब हर रंग के साथ जयपुर की एक कहानी भी उड़ान भरती है। यह कहानी है विरासत की, हुनर की, उमंग की और उस भाईचारे की, जो पतंगों के पेचों से आगे बढ़कर दिलों को जोड़ता है।

–डॉ. गोरधन लाल शर्मा,
राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त लेखक,
समाजशास्त्री एवं राजस्थान
प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ
अधिकारी

विभाजित होता समाज में सहिष्णुता का महत्व



रचना सिद्धा

आज का समय एक विचित्र विरोधाभास से गुजर रहा है। एक तरफ हम पूरी दुनिया से जुड़े हुए हैं एक क्लिक की दूरी पर हैं दूसरी ओर हम उतने ही अकेले हैं। तकनीक ने हमें पूरी दुनिया से जोड़ दिया है, लेकिन हम अपने ही आसपास के लोगों से भावनात्मक रूप से दूर होते जा रहे हैं। हमारे पास अपनी बात कहने के लिए अनेक मंच हैं, लेकिन दूसरों की बात सुनने का धैर्य कम होता दिखा देता है। विचारों का आदान-प्रदान कई बार विचारों के युद्ध में बदल जाता है। सामाजिक माध्यमों पर किसी की राय पसंद न आने पर उसे अपमानित करना, उसके चरित्र पर प्रश्न उठाना या उसे अपने विरोधी खेमे का व्यक्ति मान लेना सामान्य होता जा रहा है। ऐसे वातावरण में सहिष्णुता की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है। सहिष्णुता वह मानवीय गुण है, जो हमें दूसरों के विचारों, मान्यताओं, भावनाओं, आस्थाओं और जीवनशैली से असहमत होने के बावजूद उनका सम्मान करना तथा मतभेदों को धैर्य, विवेक और संवेदनशीलता के साथ स्वीकार करना सिखाता है।

असहमतियों के बीच भी संवाद, समझ और संवेदनशीलता के माध्यम से समाधान खोजते हुए मनुष्यता को बचाए रखने की कला ही सहिष्णुता है। सहिष्णुता एक ऐसी मानवीय दृष्टि है, जो हमें दूसरों के विचारों, विश्वासों, संस्कृतियों और जीवन-पद्धतियों के प्रति सम्मान रखना सिखाती है। यह हमें बताती है कि असहमति शत्रुता नहीं है, भिन्नता विरोध नहीं है और किसी विचार से असहमत होने का अर्थ उस विचार को रखने वाले व्यक्ति का अपमान करना नहीं है।

विचारों की विविधता समाज को समृद्ध बनाती है, जबकि असहिष्णुता उसे संकीर्णता की ओर ले जाती है। मनुष्य की पहचान केवल उसकी भाषा, धर्म, जाति, संस्कृति या विचारों से नहीं होती, बल्कि इस बात से भी होती है कि वह दूसरों की भिन्नताओं के प्रति कितना संवेदनशील है। किसी दूसरे व्यक्ति का विचार हमारे विचारों से अलग हो सकता है, उसकी जीवनशैली हमारी जीवनशैली से भिन्न हो सकती है और उसकी आस्थाएं हमारी मान्यताओं से मेल नहीं खा सकतीं। लेकिन क्या इन भिन्नताओं के कारण उसके सम्मान और अधिकारों में कोई कमी आनी चाहिए? निश्चित रूप से नहीं। इसी बोध का नाम सहिष्णुता है। एक परिपक्व और सहिष्णु समाज वही है, जहाँ एक व्यक्ति अपने विचार खुलकर रख सके और दूसरे व्यक्ति को भी ऐसा करने की स्वतंत्रता दे। सहिष्णुता न केवल हमें प्रतिक्रियाओं का गुलाम बनने से बचाती है बल्कि यह हमें किसी भी परिस्थिति में सोचने, समझने और उचित निर्णय लेने का अवसर देती है। संवेदनशील समाज वह नहीं होता जहाँ सभी लोग एक जैसा सोचते और करते हों। ऐसा समाज कभी संभव भी नहीं है। ऐसा तो एक परिवार में भी संभव नहीं होता। एक परिवार के सदस्यों की विचारधारा और सोच अलग अलग होती है। फिर भी परिवार बना रहता है एक दूसरे की भावनाओं और विचारों का सम्मान करते हुए। इसी तरह संवेदनशील समाज भी ऐसा ही होना चाहिए जहाँ अलग सोचने वाले लोग भी एक-दूसरे के साथ सम्मानपूर्वक रह सकें। जहाँ विवाद होने पर भी संवाद के रास्ते बंद न हों। जहाँ शक्ति का उपयोग दूसरों को दबाने के लिए नहीं, बल्कि कमजोरों की रक्षा के लिए किया जाए। भारतीय संविधान भी प्रत्येक नागरिक को समानता, धार्मिक स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जैसे महत्वपूर्ण अधिकार प्रदान करता है। इन अधिकारों की सार्थकता तभी है, जब हम दूसरों के अधिकारों का भी उतना ही सम्मान करें जितना अपने अधिकारों का करते हैं। लोकतंत्र केवल बहुमत की राय का नाम नहीं है; वह अल्पमत की आवाज सुनने और असहमति को सम्मान देने की व्यवस्था भी है और सहिष्णुता इसकी एक महत्वपूर्ण शर्त है।

सहिष्णुता की सबसे पहली पाठशाला हमारा परिवार है। सहिष्णु समाज का निर्माण किसी कानून या सरकारी अभियान से ही नहीं हो सकता। इसकी शुरुआत परिवार से होती है। जहां बच्चे अपने घर में बड़ों को एक-दूसरे की बात सुनते, घरेलू सहायकों का सम्मान करते और भिन्न विचारों के प्रति संयम बरतते देखते हैं, तो वे स्वाभाविक रूप से यही संस्कार सीखते हैं।

एक ही घर में रहने वाले लोगों की पसंद, स्वभाव, विचार और जीवन के अनुभव अलग-अलग होते हैं। पीढ़ियों के बीच विचारों का अंतर भी स्वाभाविक है। बुजुर्गों की जीवन-दृष्टि और युवाओं की आकांक्षाएँ हमेशा एक जैसी नहीं हो सकतीं। यदि हर मतभेद को अवज्ञा या अपमान समझ लिया जाए, तो घरों में संवाद की जगह तनाव लेने लगता है। माता-पिता जब बच्चों की बात सुनते हैं, उनकी जिज्ञासाओं का सम्मान करते हैं और गलती होने पर समझाने का रास्ता चुनते हैं, तो परोक्ष रूप से वे उन्हें सहिष्णुता की सीख ही दे रहे होते हैं। इसी तरह बच्चे जब बुजुर्गों के अनुभवों को समझने का प्रयास करते हैं, तो पीढ़ियों के बीच विश्वास का पुल मजबूत होता है।

विद्यालयों और शिक्षण संस्थानों की भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षा का उद्देश्य बच्चों को केवल परीक्षा में अच्छे अंक दिलाना या रोजगार के लिए तैयार करना नहीं, बल्कि संवेदनशील और जिम्मेदार नागरिक बनाना भी है। बच्चों को सफल होने की शिक्षा देना ही पर्याप्त नहीं है; उन्हें दूसरों के प्रति संवेदनशील होना, असफलता को स्वीकार करना, आलोचना से सीखना और मतभेदों को संवाद के माध्यम से सुलझाना भी सिखाना होगा। शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानवान व्यक्ति बनाना नहीं, बल्कि विवेकशील और संवेदनशील नागरिक तैयार करना भी है। समूह गतिविधियों, संवाद, साहित्य, कला और सामुदायिक सहभागिता के माध्यम से सहानुभूति तथा सहयोग की भावना विकसित की जा सकती है। आज के डिजिटल युग में सहिष्णुता का महत्व बहुत ज्यादा बढ़ गया है। सोशल मीडिया ने जहां अभिव्यक्ति को अभूतपूर्व विस्तार दिया है वहीं त्वरित प्रतिक्रिया, अधूरी जानकारी, अपमानजनक टिप्पणियों और घृणा फैलाने वाली सामग्री की चुनौती भी हमारे सामने आई है। किसी संदेश को पढ़े बिना साझा कर देना, किसी तस्वीर या वीडियो के आधार पर निष्कर्ष निकाल लेना और बिना तथ्य जाँचे किसी व्यक्ति को दोषी ठहरा देना इन सबसे समाज में अविश्वास और अराजकता का माहौल बन रहा है। हमें इसीलिए डिजीटली भी सहिष्णु बनने का प्रयास करना होगा। डिजिटल सहिष्णुता का अर्थ है लिखने से पहले सोचना, प्रतिक्रिया देने से पहले तथ्यों को परख लेना और असहमति व्यक्त करते समय शब्दों की मर्यादा बनाए रखना। भारत की सभ्यता और संस्कृति विविधताओं के सह-अस्तित्व की समृद्ध परंपरा से निर्मित हुई है और यह सह अस्तित्व सहिष्णुता के बिना संभव नहीं है। हमारे देश में सर्वे भवन्तु सुखिन: की भावना विद्यमान है। यहां अनेक भाषाएं, धर्म, पंथ, रीति-रिवाज और जीवन-पद्धतियां साथ-साथ विकसित हुई हैं। अलग-अलग खानपान, पहनावे और लोक परंपराओं के बावजूद भारतीय समाज की साझा सांस्कृतिक चेतना ने आज तक देश को एक सूत्र में बांधे रखा है। किसी समाज की वास्तविक प्रगति केवल उसकी आर्थिक समृद्धि, तकनीकी उपलब्धियों या भौतिक संसाधनों से नहीं आँकी जा सकती। उसकी प्रगति इस बात से भी पहचानी जाती है कि वहाँ कमजोर व्यक्ति कितना सुरक्षित है, असहमत व्यक्ति कितना स्वतंत्र है और भिन्न पहचान वाला व्यक्ति कितना सम्मानित है। हर साल 16 नवंबर को मनाया जाने वाला अंतर्राष्ट्रीय सहिष्णुता दिवस, हमें एक-दूसरे से अधिक जुड़ते हुए भी विभाजित होते विश्व में मानवता के साझा मूल्यों की याद दिलाता है।

यूनेस्को द्वारा निर्धारित यह दिवस सभ्यताओं के बीच आपसी सम्मान, स्वीकृति और समझ की आवश्यकता पर बल देता है। संयुक्त राष्ट्र ने वर्ष 1995 में सहिष्णुता के सिद्धांतों की घोषणा के साथ इस दिवस की स्थापना की थी। इसका उद्देश्य समाज में शांति, पारस्परिक सम्मान, विविधता की स्वीकृति और सहिष्णुता की भावना को मजबूत करना है। आज जब दुनिया अनेक प्रकार के वैचारिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संघर्षों से गुजर रही है, तब इस दिवस का महत्व और भी बढ़ जाता है।

– रचना सिद्धा

राशिफल सोमवार 23 नवम्बर, 2026



पंडित अनिल शर्मा

कार्तिक मास, शुक्ल पक्ष, चतुरदशी तिथि, सोमवार, विक्रम संवत-2083, भरणी नक्षत्र रात्रि 2:02 तक, वारियान योग सायं 7:59 तक, गर करण दिन 1:10 तक, चन्द्रमा आज मेष राशि में संचार करेगा।

ग्रह स्थिति– सूर्य-वृश्चिक, चन्द्रमा-मेष, मंगल-सिंह, बुध-तुला, गुरू-सिंह, शुक्र-तुला, शनि-मीन, राहु-कुम्भ, केतु-सिंह

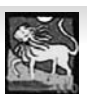
रवियोग रात्रि 2:02 तक है। भद्रा रात्रि 11:43 से आरम्भ होगी। आज वैकुण्ठ चतुरदशी, काशी विश्वनाथ प्रतिष्ठ दिवस, भरणी दीपम है।

श्रेष्ठ चौघड़िया– अमृत सूर्योदय से 8:15 तक, शुभ 9:35 से 10:54 तक, चर 1:32 से 2:51 तक, लाभ-अमृत 2:51 से सूर्यास्त तक।

राहुकाल– 7:30 से 9:00 तक, सूर्योदय 6:56, सूर्यास्त 5:30



मेष
व्यावसायिक कार्यों के लिए भागदौड़ रहेगी। नौकरीपेशा व्यक्तियों को अतिरिक्त जिम्मेदारी मिल सकती है। आर्थिक मामलों में असंतुलन बना रहेगा। आज मानसिक तनाव दूर होगा।



सिंह
परिवार में शुभ-मांगलिक संदेश प्राप्त होंगे। शुभ कार्य से संबंधित यात्रा संभव है। आज महत्वपूर्ण कार्यों से संबंधित वार्ता सफल रहेगी।



धनु
परिवार में शुभ-मांगलिक कार्य सम्पन्न हो सकते हैं। घर-परिवार में अतिथियों का आगमन बना रहेगा। परिवार में सुख-सुविधाएं बढ़ेगी। व्